6

~~सभी धर्मों में एक जैसी नैतिक मान्यताओं का समर्थन नहीं किया गया है। उदाहरण के तौर पर, हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया गया है, और अलग - अलग वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के लिए अलग - अलग 'वर्ण धर्म' बतलाए गए हैं। दूसरी ओर, जैन और बौद्ध धर्मों में स्पष्ट तौर से अस्वीकार किया गया है। इसी तरह, हिंसा - अहिंसा के प्रश्न पर भी धर्मों के बीच मतभेद हैं। एक ओर जहाँ जैन धर्म है, जिसमें अहिंसा को 'परम धर्म' माना गया है और दूसरी ओर पर [redacted] 'और [redacted]' की अवधारणा पाई जाती है।~~

ईश्वर नियम सिद्धांत के समक्ष हैं।

रैचल इन दोनों सिद्धांतो की आलोचना [redacted] अध्ययन के बाद इस ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि धर्म बहुत सारे नैतिक उलझनों को सुलझाने का कोई उपाय नहीं बताता। किसी भी धार्मिक ग्रंथ में गर्भपात के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा होने के कारण सभी अवसरवादी पंडित धार्मिक ग्रंथों का अपने अनुसार प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मों में ही नैतिक नियमों को लेकर सामंजस्य नहीं दिखाई पड़ता।

रैचल्स अपने इस अवलोकन से इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नैतिकता और धर्म दोनों अलग - अलग हैं। नैतिकता के लिए किसी धार्मिक आधार की आवश्यकता नहीं है। वस्तुत: नीति का स्थान किसी बाह्य कारण में न होकर मनुष्य के अभिप्राय में है वैसे कर्म, जो स्वतंत्र इच्छा से होते हैं, वही उचित या अनुचित हो सकते हैं। इसलिए वैसे नियमों का पालन करने में, जो किसी बाह्य सत्ता द्वारा निर्मित हों, सच्ची नैतिकता नहीं है। वास्तविक नैतिक नियम तो वही होगा जो बाह्य नहीं, अपितु आन्तरिक हो। [redacted]

दर्शन मित्र

* प्राकृतिक नियमों के अनुकूल आचरण ही शुभ और उसके विपरित आचरण अशुभ होते हैं।

कुछ विचारकों के अनुसार नैतिकता प्रकृति प्रदत्त है, क्योंकि कुछ प्राकृतिक नियम हैं जिनका पालन मानव के लिए आवश्यक है, विशेषकर तब जब हम नैतिक होना चाहते हैं। इस विचार का समर्थन ग्रीक स्टोइक और थॉमस एक्वीनास ने भी किये हैं। एक्वीनस ने नैतिकता का आधार प्राकृतिक नियम और अतिप्राकृतिक सत्ता (ईश्वर) दोनों को माना है। उदाहरण के लिए कुछ लोग समलैंगिकता को अनैतिक मानते हैं क्योंकि यह 'प्राकृतिक नियम' के विरुद्ध है। प्राकृतिक नियमों के लिए हम इसलिए बाध्य होते हैं कि इन नियमों के अनुकूल यदि हमारा आचरण हुआ तो हमें अच्छा स्वास्थ्य, सुख आदि मिलेगा अन्यथा दुःख। परंतु प्राकृतिक नियमों के सहारे नैतिकता और सामाजिक व्यवस्था असंभव है। गुरुत्वाकर्षण का नियम बतलाता है कि ऊपर फेंकने पर सभी वस्तुएं समान रूप से पृथ्वी की ओर आती हैं। यहां न्यूटन ने प्राकृतिक नियम का वर्णन किया, यह नियम वर्णनात्मक अर्थ से युक्त है, जबकि नैतिक नियम वस्तुनिष्ठ या सामाजिक नियम वस्तुनिष्ठ न होकर नियोजनात्मक होते हैं। गुरुत्वाकर्षण का नियम यह नहीं कहता कि गेंद को ऊपर से नीचे गिरना चाहिए, जबकि नैतिक नियम में 'चाहिए' का प्रयोग होता है। हम कहते हैं कि 'हिंसा नहीं करनी चाहिए' जबकि प्राकृतिक नियम 'है' का प्रयोग करता है। यहां विचारणीय प्रश्न है, क्या कोई प्राकृतिक नैतिकता है जो हमें यह बतलाये कि हमें प्रकृति के साथ कैसा आचरण करना चाहिए? संभवतः ऐसा कुछ भी मानक ढंग से कहना कठिन है। मानव आचरण के संबंध में समलैंगिकता संबंध पर भले ही प्रकृति के विरुद्ध होने का आरोप लगा दें, परंतु वस्तुतः प्रकृति में कोई ऐसा नियम नहीं है जो इसे निषिद्ध करता हो। अतः हम कह सकते हैं मूल्य की सम्पूर्ण धारणाएं व्यक्तिनिष्ठ हैं और मानवरहित सम्पूर्ण जगत का स्वयं में कोई मूल्य नहीं है, क्या हम मानवरहित संसार की कल्पना कर सकते हैं? क्या वैसी स्थिति में सूर्य के प्रकाश, वायु, जल, पृथ्वी का वही मूल्य रह जाएगा जो हमारे रहने पर है? और यह माना जाए कि सभी वस्तुओं का उद्देश्य मनुष्यों के प्रयोजनों को पूरा करना है और यही प्राकृतिक नियम है और इसी में नैतिकता है, तब प्रश्न उठता है कि इस प्रकृति को नियंत्रित कौन करता है? अगर हम किसी दैविक सत्ता का समर्थन करते हैं तब यह सिद्धांत भी उन सभी आलोचनाओं का शिकार हो जाएगा जो

* अनीश्वरवादी धर्मों में भी नैतिकता और आचार तो है ही। यह प्रमाणित करता है कि नैतिक कर्तव्य में ईश्वर आदेश की मान्यता असंगत है। बौद्ध मत और जैन मत इसके उदाहरण हैं।

* यदि धर्म को नीति का मूल मान लिया जाए तो नैतिकता साधन (Mean) बन जाती है। किन्तु नैतिकता साध्य है, साधन नहीं। स्वयं आई. काण्ट साहब ने भी नैतिक मूल्यों को निरपेक्ष आदेश (Categorical Imperative) माना है। ~~अन्य विचार जो धर्म को नैतिकता का मूल मानते हैं~~

कुछ दार्शनिकों का मत है कि धर्मशास्त्र का आधार नीतिशास्त्र है, क्योंकि धर्म का आधार है नीति। हममें यह विश्वास है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मों का बुरा। पर वास्तविक जगत में ऐसा नहीं पाया जाता। बुरे ही अधिकतर सुख भोगते हैं और सदाचारी कष्ट का शिकार बनता है। इसलिए इस भेद के कारण हममें यह विश्वास उत्पन्न होता है कि कोई शक्तिशाली ईश्वर का अस्तित्व है, जो इन विषमताओं को दूर करता है। वह सदाचारियों को पुरस्कार देता है तथा दुराचारियों को दण्ड। यही विश्वास धर्म की जड़ है — काण्ट, मार्टिन्यु आदि

दूसरे, मनुष्य नैतिक नियमों का पालन करना अपना कर्तव्य समझता है। किसी सत्ता के प्रति ही कोई कर्तव्य होता है। यह सत्ता कौन है? इसके फलस्वरूप ईश्वर के अस्तित्व में हमारा विश्वास होने लगता है।

तीसरे, नीतिशास्त्र में चरित्र के आदर्श की मीमांसा होती है। यह आदर्श केवल सैद्धान्तिक नहीं माना जाता। इसलिए एक ऐसी शक्ति को हम मानते हैं, जो उन आदर्शों से सम्पूर्ण है।

इन्हीं कारणों से कहा गया है कि नैतिक विचारों से ही ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास उत्पन्न होता है। पर इस विचार में भी अत्युक्ति है। किसी-न-किसी रूप में धर्म हर देश और काल में रहता है, चाहे वहाँ नैतिक आचरण या विचार हो या नहीं हो। इसके अलावा, धार्मिक विचार मनुष्यों की अपूर्णता के भाव से उदय होते हैं, ऐसी भी मान्यता है कि मनुष्य अपने को अपूर्ण पाकर एक ऐसी सत्ता में विश्वास करने लगता है, जो सर्वशक्तिमान है। जबकि नैतिकता आत्म-पूर्णता की भावना से आती है।

नैतिक गुणों की सृष्टि उसी ने की, अतः वह स्वयं इन नैतिक भेदों से परे है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ईश्वर नीतिशून्य है। अच्छाई आदि नैतिक गुण उसके आवश्यक गुण नहीं हैं। अतः इस मत के अनुसार ईश्वर की पूर्णता लुप्त हो जाती है। वह डर का विषय हो जाता है, श्रद्धा का नहीं।

अगर यह कहा जाए वास्तव में ईश्वर नैतिक पूर्णता की शाश्वत मूर्ति है। वह पूर्ण है। शुभ और धर्म उसकी आवश्यक प्रकृति है। यह कहना है कि वह शुभ को अशुभ या अशुभ को शुभ कर दे सकता है, युक्तिपूर्ण नहीं, क्योंकि वह अपने स्वभाव या प्रकृति को कैसे बदल सकता है। जो उचित है, उसका उसके स्वभाव से सामंजस्य है और जो अनुचित है, उसका वैमनस्य। इसलिए उचित - अनुचित; शुभ - अशुभ आदि नैतिक गुण उसके स्वभाव पर निर्भर है, न कि उसकी इच्छा पर। कोई कर्म इसलिए शुभ या अशुभ नहीं है कि वह ऐसा आदेश देता है या उसका निषेध करता है, बल्कि वह ऐसा आदेश या निषेध इसलिए करता है कि वे शुभ या अशुभ हैं। यह विचार कि नैतिक गुण (शुभ - अशुभ, उचित - अनुचित) ईश्वर की इच्छा पर नहीं, बल्कि उसकी प्रकृति पर आश्रित हैं, देकार्त ने स्वयं कई स्थानों पर व्यक्त किया है। पर इसका अर्थ यह होगा कि नैतिक शुभत्व ईश्वर की इच्छा से भिन्न और स्वतंत्र है। ऐसी स्थिति में केवल ईश्वर का आदेश ही नैतिकता का मूल आधार नहीं हो सकता।

इन कठिनाइयों के अलावा अन्य कारणों से भी धर्म को नैतिकता का आधार मानना स्वीकार्य नहीं लगता।

+ ईश्वरीय नियम भी अन्य बाहिर्गत नियमों की भांति हम पर बाहर से लादे जाते हैं, अतः उनका 'पालन करना चाहिए' की भावना से नहीं, अपितु 'पालन करना होगा' की भावना से ही होता है। इस भावना में स्वतंत्रता नहीं, अतः नैतिकता का लोप हो जाता है।
+ नैतिक मापदण्ड बुद्धिसम्मत होना चाहिए, पर ईश्वरीय नियम ईश्वर की स्वच्छन्द इच्छा पर निर्भर है।
+ धर्म अनेक हैं। उनमें अधिकांश तत्वों में मौलिक समरूपता नहीं है। अतः उन्हें वास्तविक मापदण्ड मानने में अड़चन आ जाती है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नैतिकता को ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर मान लेने से अनेक दार्शनिक कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। सबसे पहली कठिनाई तो यही है कि अभी तक ईश्वर की सत्ता ही संदिग्ध है। किंतु यदि ईश्वर के अस्तित्व को मान भी लिया जाये तो भी नैतिकता और ईश्वरीय इच्छा के सम्बन्ध में ऐसे अनेक जटिल प्रश्न उठते हैं, जिनका सर्वमान्य एवं निश्चित उत्तर देना असंभव है। उदाहरणार्थ हम यह निश्चित रूप से कैसे जान सकते हैं कि हमारे नैतिक कर्तव्यों के संबध में ईश्वर की वास्तविक इच्छा क्या है? फिर यदि हमें ईश्वर की इच्छा का ठीक-ठाक ज्ञान हो भी जाय तो भी यह प्रश्न उठता है कि हम उसकी इच्छा के अनुसार आचरण क्यों करें? यदि हम ईश्वर द्वारा दिए जाने वाले पुरस्कार की आशा अथवा दंड के भय से प्रेरित होकर ही शुभ कर्म करते हैं तो, जैसा कि काण्ट ने कहा है, हमारा आचरण वास्तविक नैतिकता के विरुद्ध होगा, क्योंकि पुरस्कार का लोभ या दंड का भय सच्ची नैतिकता का मूल आधार कदापि नहीं हो सकता। वास्तव में काण्ट का यह मत उचित ही प्रतीत होता है कि सच्ची नैतिकता ईश्वर अथवा किसी अन्य बाह्य शक्ति की इच्छा पर आधारित न हो कर सदैव आत्मारोपित होती है — अर्थात मनुष्य किसी बाह्य कारण से विवश न होकर स्वयं अपनी इच्छानुसार ही नैतिक नियमों का पालन करता है।

~~यहाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसे ईश्वर से~~
दूसरा, अगर ईश्वर जो कुछ अपनी स्वतंत्र इच्छा से करना चाहता है वही शुभ है, और जो कुछ ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध है वह अशुभ है। केवल ईश्वरीय इच्छा में ही शुभ का आधार एवं अस्तित्व निहित है, और वह इसलिए किसी कर्म का आदेश ~~देता है~~ या निषेध नहीं करता कि वैसा उचित है या अनुचित है अपितु वह आदेश देता है और निषेध करता है इसलिए वे कर्म उचित या अनुचित हैं। उसका आदेश उचित-अनुचित पर निर्भर नहीं अपितु उचित-अनुचित उसके आदेशों पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में वह उचित को अनुचित और अनुचित को उचित बना दे सकता है। अर्थात अगर झूठ बोलना ईश्वर द्वारा स्वीकार्य है तो वह उचित हो जाएगा और ईश्वर जरूरतमंद की मदद करने का निषेध करता है, तो वह कार्य अनुचित हो जाएगा।

(B)

**ch. 4 Does Morality Depend on Religion**
**क्या नैतिकता धर्म पर अवलम्बित है?**

जेम्स रैचल अपनी पुस्तक 'एलिमेंट्स ऑफ मॉरल फिलॉसफी' (Elements of Moral Philosophy) के अध्याय-4 'क्या नैतिकता धर्म पर अवलम्बित है?' (Does Morality Depend on Religion) में इस प्रश्न का हल ढूंढने की कोशिश करते हैं कि नैतिकता को धर्म पर अवलम्बित माना जाए या स्वतंत्र? रैचल अपने इस अवलोकन में धर्म को नैतिकता का आधार बताने वाले दो सिद्धांतों (1) ईश्वरीय नियम (Divine Command Theory) और प्राकृतिक नियम (Theory of Natural Law) को जाँचते हैं। रैचल उक्त सिद्धांतों में निहित कमियों को दर्शाते हुए यह स्थापित करते हैं कि नैतिकता धर्म से स्वतंत्र है।

यद्यपि धर्म की कोई निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा देना लगभग असम्भव है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि किसी दैवी शक्ति में मनुष्य की दृढ़ आस्था प्रायः धर्म का मूल आधार है और यह आस्था उसमें कुछ ऐसी भावना उत्पन्न करती है जिस से प्रेरित हो कर वह उस दैवी शक्ति की आराधना अथवा उपासना करता है तथा अपने समस्त कर्मों के लिए अपने-आप को उसी के प्रति उत्तरदायी मानता है। इस प्रकार ईश्वर अथवा किसी अन्य दैवी शक्ति में मानव की भावनात्मक आस्था धर्म के लिए सामान्यतः आवश्यक है, अतः धर्म का सम्बंध मानव की बुद्धि से न होकर मूलतः उसकी भावना से ही है।

Add Point I here

नियम राज्य के द्वारा निर्मित हो या समाज के द्वारा, मनुष्य ही उसका निर्माण करता है। मनुष्य अपूर्ण है। अतः वे नियम भी पूर्ण नहीं होते। इसलिए, वे वास्तविक और चरम नैतिक आदर्श नहीं हो सकते। केवल ईश्वर ही पूर्ण है। वह स्वयंभू और सर्वव्यापक है। उसकी स्वछन्द इच्छा पर सभी सत्य आश्रित हैं। इसलिए लॉक, देकार्त आदि विद्वानों ने ईश्वरीय नियम को ही नैतिकता का चरम मापदण्ड बतलाया है। ईश्वर की स्वतन्त्र इच्छा ही नैतिकता की कसौटी है, इसलिए कि उसकी स्वतन्त्र इच्छा से नैतिक नियमों का निर्माण होता है। जैसे कर्म जो ईश्वर द्वारा आदिष्ट हैं, उचित हैं और जो निषिद्ध हैं अनुचित। ~~इस~~ इसका